Indian Journal of Modern Research and Reviews

This Journal is a member of the *'Committee on Publication Ethics'*

Online ISSN:2584-184X

Review Paper

प्राचीन भारत की न्यायिक व्यवस्था की बदलती परिस्थितियां

मिनाक्षी देवी [1*], डॉ. नहीद अहमद [2]

[1] पीएचडी, रिसर्च स्कालर, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, आई, ई, सी, विश्वविद्यालय बद्धी, सोलन, हिमाचल प्रदेश, भारत

[2] असिस्टेंट प्रौफेसर, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, आई. ई. सी. विश्वविद्यालय बद्धी, सोलन, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author: * मिनाक्षी देवी

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.17768918

सारांश

प्राचीन भारत की न्यायिक व्यवस्था भारतीय समाज की मुख्य आधारशिला रही है जो कि धर्म पर आधारित थी। प्राचीन भारतीय न्यायिक व्यवस्था केवल दंड देने तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि यह संपूर्ण व्यवस्था धर्मनीति तथा समाजिक आचार पर स्थापित थी। प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य ऋग्वैदिक काल से लेकर गुप्त काल तक की न्याय व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करना है। इसके अध्ययन में ऋग्वेद धर्मसूत्र , स्मृतियाँ, महाभारत, रामायण तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र जैसे प्राथमिक ग्रंथों का आश्रय लिया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक इतिहासकार जैसे A.S Alteker, K.P जयस्वाल तथा R.C मजुमदार के विचारों को भी शोध का आधार बनाया गया है। प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट होती है कि प्राचीन भारत में राजा ही सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में कार्य करता था, लेकिन सभा, समिति, पंचायत तथा अन्य न्यायालय भी न्यायिक प्रक्रिया में से सक्रिय थे। संपूर्ण न्याय व्यवस्था धर्म तथा नैतिक मूल्यों पर आधारित थी जिसमें लोगों के नैतिक आचरण, सामाजिक परम्पराएँ तथा धर्म शास्त्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही महिलाओं तथा निम्न वर्णो के लोगों की न्यायिक व्यवस्था में बदलाव आता गया संपूर्ण रूप से कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय न्यायिक व्यवस्था प्राचीन समाज में शांति तथा व्यवस्था बनाए रखने में सहायक रही।

Manuscript Info.

✓ **ISSN No:** 2584- 184X
✓ **Received:** 26-07-2025
✓ **Accepted:** 24-08-2025
✓ **Published:** 29-08-2025
✓ **MRR:3(8):**2025;52-55
✓ **©2025, All Rights Reserved.**
✓ **Peer Review Process:** Yes
✓ **Plagiarism Checked:** Yes

How To Cite this Article

मिनाक्षी देवी, नहीद अहमद. प्राचीन भारत की न्यायिक व्यवस्था की बदलती परिस्थितियां. Ind J Mod Res Rev. 2025;3(8):52-55.

कुंजी शब्द: प्राचीन, दंड, न्याय, प्रशासन, विधि, न्याय व्यवस्था

परिचय

प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था का विकास एक दीर्घ ऐतिहासिक यात्रा का परिणाम है, जिसकी शुरुआत ऋग्वैदिक काल से होती है तथा गुप्त काल में इसकी परिपक्वता देखने को मिलती है। ऋग्वैदिक कालीन समाज जनजातीय समाज था जहाँ राजा केवल एक रक्षक तथा धर्म का पालन करने वाला होता था धर्म ऋत तथा सत्यता न्याय के मुख्य सिद्धांत थे। ऋग्वैदिक काल में ऋत को महत्वपूर्ण माना जाता था, जिसका पालन लोगों तथा देवताओं दोनों के लिए आवश्यक था। ऋग्वैदिक काल में न्याय के संचालन में सभा तथा समिति जैसी संस्थाएँ अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। सभा एक वृद्ध लोगों की संस्था थी तथा समिति में आम लोग शामिल होते थे। इन संस्थाओं के द्वारा सामाजिक विवादों को निपटाया जाता था। ये संस्थाएँ राजा के चुनाव तथा नीती निर्माण में सहायता करती थी। दंड की व्यवस्था साधारण थी चोरी तथा असत्य बोलने पर मौखिक फटकार, सामाजिक बहिष्कार तथा कभी कभी आर्थिक दंड भी दिया जाता था।

वरुण देवता को सबसे शक्तिशाली देव बताया गया है जो कि ऋत की रक्षा करते थे। वरूणदेव ऐसे देव हैं जो ऋत की रक्षा करते। है तथा समाज को व्यवस्थित रखते हैं। ऋग्वैदिक काल की न्याय व्यवस्था में वरुण देव का महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद के सूत्रों से वरूणदेव की श्रुति

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

हुई है। वैदिक काल में सभा समिति तथा न्याय व्यवस्था में भागीदारी से इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है की उस समय गणतंत्र तथा राजतंत्र दोनों प्रकार की शासन व्यवस्था थी। राजा के निर्वाचन तथा शासन व्यवस्था को चलाने के लिए सभा, समिति तथा रतनी जैसी संस्थाएँ विद्यमान थी। महिलाओं की स्थिति भी सम्मानजनक तथा स्वतंत्र थीं। उन्हें वादी- प्रतिवादी तथा गवाह बनने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। उन्हें भी पुरुषों की भांति शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। धर्म तथा आचार संहिता से संबंधित विवादों में महिलाओं की राय को महत्त्वता दी जाती थी। जैसे जैसे समाज जनजाति संगठन की ओर अग्रसर हुआ तो न्याय व्यवस्था अधिक संगठित रूप में सामने आने लगी। धर्मसूत्र तथा स्मृतियां न्याय का मुख्य आधार बने ग्राम कुल तथा जनपद स्तर पर न्यायिक संस्था सक्रिय थीं। राजा को न्याय का मुख्य आधार माना जाने लगा। गंभीर मामले राजा की सभा द्वारा निपटाए जाने लगे दंड व्यवस्था ने भी कठोर रूप धारण कर लिया। चोरी तथा गलत आचरणों के लिए शारीरिक दंड तथा आर्थिक दंड तथा कभी कभार कारावास भी दिए जाने लगा। समाज में वर्णव्यवस्था का आरंभ हुआ, जिसमें ऋग्वैदिक काल के मुकाबले अधिक कठोर रूप धारण कर लिया दंड को महत्वपूर्ण माना गया। दंड को धर्म की रक्षा करने वाला तथा राजा का मुख्य हथियार बताया गया। वर्ण व्यवस्था के कठोर हो जाने के कारण न्याय वर्ण आधारित तथा पक्षपाती हो गया। धर्मसूत्रों तथा धार्मिक विधानों में वर्णित नियम न्याय का मुख्य आधार बने इस काल में स्त्रियों को संपत्ति तथा उत्तराधिकार से संबंधित मामलों में न्याय प्राप्त करने का अधिकार था, लेकिन उनके अधिकारों में गिरावट आनी शुरू हो गई।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति ऋग्वैदिक काल के मुकाबले सीमित हुई, लेकिन न्यायिक प्रक्रिया में उनकी भूमिका संपूर्ण रूप से खत्म नहीं हुई। धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों में उनके अधिकार तथा कर्तव्यों को निर्धारित किया गया, जिसके आधार पर उन्हें न्यायिक संरक्षण मिला। विवाह, सम्पत्ति, उत्तराधिकार तथा पारिवारिक जीवन से संबंधित महिलाएं अपने अधिकारों के लिए पंचायत या राज़ दरबार में जाने का अधिकार रखती थी। मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्यस्मृति में महिलाओं की संपत्ति को स्त्री धन के रूप में स्वीकार किया गया तथा स्पष्ट किया गया कि उनकी संपत्ति को पति, पिता या पुत्र अन्यायपूर्ण तरीके से हथिया नहीं सकते अगर किसी महिला पर अत्याचार होता तो राजा या न्यायालय पर उसे न्याय दिलाने की जिम्मेदारी होती थी । हालांकि उसे पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की गवाही को तबजुव नहीं दिया जाता था। उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की भागीदारी सीमित कर दी गई। इस तरह उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की न्यायिक भागीदारी अपेक्षाकृत सीमित रही, लेकिन वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय का सहारा ले सकती थी।

छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व में महाजनपदों तथा बौद्ध धर्मों के उदय के कारण न्याय व्यवस्था का स्वरूप और भी विकसित हुआ। इस काल में न्याय व्यवस्था अधिक संगठित तथा जटिल रूप से सामने आयी। दंड विधि अधिक स्पष्ट हुई तथा न्याय प्रदान करने के लिए दंडाधिकारियों की नियुक्ति होने लगी। बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म के उदय के कारण न्याय में अहिंसा और नैतिकता की धारा प्रवाहित हुई महाजनपद कालीन न्याय व्यवस्था में समरूपता न होकर राजा की प्रगति तथा राजनीतिक अवस्था के अनुसार अलग अलग था। जनपद काल भारतीय कानून प्रणाली का वह चरण है। जहाँ धार्मिक नैतिकता, लोक व्यवहार तथा राजा की आज्ञा के आधार पर न्यायिक व्यवस्था निर्मित हुई। उत्तर वैदिक कालीन, न्यायिक व्यवस्था, वेद, ब्राह्मणों तथा ग्राम पंचायतों तक सीमित थी परंतु महाजनपद काल में न्याय की सत्ता में स्पष्ट रूप से न्यायिक अधिकारों को केंद्रीयकृत किया। महाजनपद काल में राजा केवल धर्म का पालनकर्ता ही नहीं था बल्कि वह धर्म का संस्थापक भी हुआ। इस काल में दंड प्रणाली, दंड, विधि, साक्ष्य पद्धति, कानूनी अधिकारियों की भूमिका नियोजित होने लगी। न्यायिक व्यवस्था केवल अलौकिक या धर्म पर आधारित ना होकर व्यवहारिक व सामाजिक जरूरतों के हिसाब से होने लगी। महाजनपद काल में वर्ण व्यवस्था व जाति व्यवस्था ने भी न्यायिक व्यवस्था को प्रभावित किया जहाँ ब्राह्मणों को विशेष अधिकार प्राप्त थे तथा शूद्र तथा महिलाओं के न्यायिक अधिकार सीमित रहे। बौद्ध धर्म व जैन धर्म के उदय के कारण न्याय में अहिंसा, समानता, सदाचार जैसे नियमों से अध्यात्मिक मूल्य जागृत हुए विशेष बौद्ध संघों में मामलों के निपटान के लिए आंतरिक न्यायिक प्रणाली मौजूद थीं जो सामाजिक व्यवस्था में न्याय की एक अन्य अवधारणा को दर्शाती है। इस प्रकार इस काल की न्याय व्यवस्था केवल राजनीतिक शासन का भाग ही नहीं थी, बल्कि समाजिक व्यवस्था, धार्मिक परंपरा, दर्शन इस सिद्धांत से भी गहराई से जुड़ी हुई थी। अब समाज कानूनी जागरूकता की ओर अग्रसर हो रहा है तथा न्याय केवल प्रतिशोध या दंड पर ही आधारित ना रहकर समाज को संतुलित करके तथा धर्म की स्थापना का भी माध्यम बना।

महाजनपद काल प्राचीन भारत की राजनीतिक सामाजिक बदलावों का के कारण छोटे छोटे जनजातीय राज्य में बड़े बड़े महाजनपदों में तबदील हो गए राज्य की मजबूती के लिए संगठित न्याय प्रणाली की आवश्यकता महसूस हुई। जिस कारण महाजनपद काल में न्याय व्यवस्था में औपचारिक तथा प्रशासनिक रूप ले लिया। इस काल में राजा को न्याय का मुख्य अधिकारी माना गया परंतु राजा न्याय संबंधी कार्य मंत्रिमंडल सभाओं तथा परिषदों की सहायता से करता था। अब अपराध तथा दण्ड स्पष्ट रूप से सामने आयी जैसे चोरी, हत्या व्यविचार, विद्रोह आदि जिसकी वजह से न्याय व्यवस्था अधिक औपचारिक तथा प्रशासनिक रूप में सामने आई मौर्यकाल आते आते न्याय व्यवस्था का अधिक परिपक्व रूप सामने आया। यहाँ भी राजा मुख्य न्यायाधीश के रूप में कार्य करता रहा, लेकिन उसकी शक्तियां तथा कार्यप्रणाली में कुछ बदलाव अवश्य आएं। मौर्य काल में न्यायाधीशों का एक पदानुक्रम था। जिसमें ग्राम परिषद से लेकर राज न्यायालय तक न्याय प्रदान किया जाता था। सबसे निचले स्तर पर ग्राम परिषद इसके ऊपर संग्रहण, फिर द्रोणमुख न्यायालय, इसके ऊपर केंद्रीय न्यायालय तथा सबसे ऊपर राजा का न्यायालय था। अगर कोई व्यक्ति इन न्यायालयों के फैसले पर संतुष्ट नहीं होता तो मैं सीधे राजा के न्यायालय में अपनी अपील कर सकता था। राजा का निर्णय अंतिम व सर्वमान्य होता था। कौटिल्य ने सभी न्यायालयों को दो भागों में बांटा है धर्मस्थीय न्यायालय तथा कंटक शोधक न्यायालय इन दोनों न्यायालयों में तीन तीन न्यायाधीश बैठकर न्याय का कार्य करते थे इन न्यायाधीशों को धर्म, व्यवहार, चरित्र तथा राज्य शासन का अध्ययन करके ही न्याय करना होता था इन चारों में राज्य शासन को सबसे प्रमुख माना जाता था। राजा न्याय करते समय विद्वान व सभ्य लोगों से विचार विमर्श करके राय लेता था, इसके पश्चात ही न्याय करता था। यदि राज्य के कर्मचारी गलत आचरण करते हैं तो उनके लिए भी दंड की व्यवस्था थी। मौर्यकाल की दंड व्यवस्था काफी कठोर थी। छोटे मोटे अपराधों के लिए अर्थदंड लगाया जाता था। इसके

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अतिरिक्त कोड़े मारना, कैद, अंग भंग जैसी सजाएं भी दी जाती थी तथा गंभीर अपराधों के लिए मृत्युदंड की सजा भी दी जाती थी। धन से संबंधित घपला करने वालों पर भी दंड की व्यवस्था थी। मौर्य की शासनव्यवस्था बहुत ही उच्च कोटि की थी। जिस कारण समाज में अपराध कम होते थे।

कोटिल्य ने कंटकशोधक न्यायालय तथा धर्मस्थीय न्यायालय का वर्णन इस प्रकार से किया है जैसे कंटकशोधक न्यायालय अर्थात राज्य के सभी प्रकार के कंटक अर्थात बाधा या अपराध जनक तत्वों को दूर करना जैसे चोरी, ठगी, व्यापार में धोखाधड़ी, नकली मुद्रा बनाना, नाप तौल में गड़बड़ी, सार्वजनिक व्यवस्था को भंग करना। संबंधित मामले की सुनवाई होती थी। ये न्यायालय अपराधियों तथा भ्रष्टाचारियों के विरुद्ध कठोर दंड का निर्धारण करता था, जिसमें पुलिस तथा गुप्तचरों की मदद भी ली जाती थी।

धर्मस्थीय न्यायालय में मुख्यता: राज्य के नागरिको से संबंधित विवाद जैसे विवाह, उत्तराधिकार संबंधी विवाद, सम्पत्ति विभाजन, ऋण का लेन देन, पारिवारिक मामलों का निर्णय, धर्मशास्त्रों, स्मृतियो तथा समाज में प्रचलित रीतियों के अनुसार लिया जाता था, जिसमें ब्राह्मणों, विद्वानों एवं धर्म शास्त्रों के ज्ञाता अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इस तरह जहाँ कंटक शोधक न्याय राज्य की दंडात्मक एवं आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था करता, वहीं धर्मस्थीय, न्यायालय, धार्मिक, सामाजिक मर्यादाओं के अनुसार न्याय देने वाला संस्थान था।

तालिका

आधार	कंटकशोधन न्यायालय	धर्मस्थीय न्यायालय
अर्थ	कटक – बाधा, शोधन – हटाने वाला; अर्थात बाधाओं/अपराधों को दूर करने वाला न्यायालय	धर्मस्थीय – धर्म पर आधारित न्याय करने वाला न्यायालय
मामलों के प्रकार	अपराध, चोरी, ठगी, नाप-तौल में धोखाधड़ी, नकली मुद्रा आदि दंडनीय अपराध	विवाह, उत्तराधिकार, संपत्ति विवाद, ऋण–लेनदेन, पारिवारिक मतभेद
स्वरूप	दंडात्मक तथा आर्थिक न्यायालय	नागरिक (सिविल) प्रकृति का न्यायालय
फैसले का आधार	राज्य के नियम, प्रशासनिक व्यवस्था और दंड विधान	धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ तथा सामाजिक परंपराएँ
सहयोगी	पुलिस तथा गुप्तचर तंत्र	विद्वान ब्राह्मण तथा धर्मशास्त्र के ज्ञाता
मकसद	समाज के विरोधी एवं अपराधी तत्वों को समाप्त करना	धार्मिक–सामाजिक आचरण के अनुसार न्याय प्रदान करना

मौर्य की बहुस्तरीय न्याय प्रणाली केवल न्याय तत्काल ही उपलब्ध नहीं करवाती थी, बल्कि अपील की व्यवस्था देखकर न्याय को अधिक पारदर्शी तथा उत्तरदायी भी बनाती थी। न्याय में स्थानीय रीती रिवाज व केंद्रीय कानून दोनों का स्वामित्व दिखाई पड़ता है जो कि मौर्य काल की शासन व्यवस्था की कुशलता तथा न्यायप्रियता को सत्यापित करता है।

A.S Alteker टेक करके शब्दों में मौर्यकालीन न्याय व्यवस्था में राजा सर्वोच्च था, लेकिन धर्मस्थ तथा अधिकारियों के द्वारा दैनिक न्याय किया करता था। राम शरण शर्मा के अनुसार अशोक के धर्म निर्देशों ने न्याय को मानवीय तथा सहिष्णु बनाया। मौर्य की न्याय व्यवस्था प्राचीन भारत की सबसे सुदृढ़ तथा संगठित व्यवस्था थी, जिसमें राजा मुख्य न्यायाधीश के रूप में कार्य करता था। न्यायिक प्रक्रिया में वादी - प्रतिवादी की गवाही साक्षी दस्तावेज अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखते थे तथा झूठे साक्ष्य पर कठोर दंड की व्यवस्था थी। मौर्य काल का दंड विधान अत्यधिक कठोर था, जिसमें शारीरिक दंड, कारावास अथवा मृत्युदंड की व्यवस्था थी। लेकिन अशोक काल में न्याय व्यवस्था ने एक मानवीय तथा नैतिक रूप ले लिया। कलिंग युद्ध के पश्चात अशोक ने दण्डनीति को करुणा तथा अहिंसा में तबदील कर दिया। धर्ममहामातो की नियुक्ति की गई। जो कि लोगों की शिकायतों को सुनते तथा धर्मानुसार न्याय करते अशोक के शिलालेख से पता चलता है कि मृत्युदंड को कम करने कैदियों को राहत देने तथा न्याय में देरी ना करने पर ज़ोर दिया गया। इस तरह से जहाँ एक और न्याय व्यवस्था कठोर तथा राजकीय शक्ति पर आधारित थी, वहीं दूसरी ओर अशोक ने उसे धर्म, करुणा तथा सामाजिक कल्याण की भावना से एक मानवीय रूप दिया।

मौर्य शासकों की तरह गुप्त शासक भी न्यायशील थे। गुप्त शासकों ने प्रजा को न्याय दिलवाने के लिए अपने राज्य में बहुत से न्यायालय की स्थापना की थी। अन्य कालों की तरह दंड की व्यवस्था थी परंतु दंड में उदारता तथा नरमी बरती गई। इस काल में मृत्युदंड बहुत ही कम दिया जाता था। बार बार अपराध करने वालों का दायां हाथ काट लिया जाता था। पूरे साम्राज्य में लूटपाट का कोई नामोनिशान नहीं था। इसका पता इस बात से लगाया जा सकता है की फ़ाहियान जो कि एक विदेशी यात्री था। उसने अकेले ही कई स्थानों की यात्रा की, लेकिन उसे कहीं भी चोरी या लूटपाट का सामना नहीं करना पड़ा। इस गुप्तकाल की न्याय व्यवस्था इसलिए भी अलग दिखती है। धर्मशास्त्रों जैसे मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृतियो का महत्त्व काफी बढ़ गया इन समितियों से पता चलता है कि गुप्तकालीन न्याय व्यवस्था बहुत ही विकसित थी।

के पी जस्वाल के विचार है कि गुप्तकाल में धर्मशास्त्रों का प्रभाव बढ़ और मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति की जैसे ग्रंथों ने न्याय प्रक्रिया को नियमित किया। ग्राम पंचायत श्रेणियाँ तथा प्रांतीय अधिकारी न्याय के कार्य में सक्रिय रूप से शामिल हुए। यहाँ भी राजा सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में कार्य करता था। उसका फैसला भी अंतिम तथा सर्वमान्य होता था। गुप्त अभिलेखों में न्यायाधीशों को महादंडनायक, दंडनायक तथा सर्व दंडनायक कहा गया है।

गुप्तकाल में अपराध तथा दंड व्यवस्था पहले के कालों की तरह ही थी, लेकिन गुप्तकाल में सबसे पहले मानवीय अधिकारों तथा सहानुभूति को जगह दी गई जो कि पहले के कालों में नहीं थी। इस समय दंड देते वक्त मानवीय पक्ष का भी ख्याल रखा जाता था। जिंस वजह से गुप्तकाल की दंड व्यवस्था पहले के मुकाबले नरम तथा उदार हो गई। गुप्तकाल में मृत्युदंड लगभग समाप्त हो गया अथवा बहुत ही कम दिया जाता था। इस तरह वैदिक काल से चले आ रहे हैं। अमानवीय दंड गुप्त काल में समाप्त हो गए तथा न्याय एवं दंड व्यवस्था के नए युग का आरंभ हुआ। गुप्तकाल में ल बारह तरह के साक्ष्य का उल्लेख प्राप्त होता है जो कि इस तरह से है जैसे लिखित , गुढ, स्मारित, कुल्य, दूतक, यादृच्छिक, उत्तरसाक्षी, कार्यमध्यगत , भूभृत , अध्यक्ष तथा ग्राम । पिछले कालों की भाँति गुप्त काल में भी लोग दिव्य शक्तियों को मानते थे, जिससे। रुष्ट हो जाने पर सर्वनाश हो जाएगा। ऐसे मानते थे। ऐसी मान्यता को मानने के कारण ही गुप्त काल में लोग सच्चाई से

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अवगत होने के लिए दिव्य परमाणो का प्रयोग करते थे। गुप्तकाल में नौ तरह के दिव्यो का उल्लेख प्राप्त होता है।
घट विधि
अग्नि विधि
तोयविधि
विषविधि
कोषविधि
तण्डुविधि
तत्तमाष विधी
फालविधि
कर्मविधि
R.C मजुमदार ने गुप्त काल को हिंदू कानून का एक व्यवस्थित रूप का समय कहा है क्योंकि इस काल में शस्त्र पर आधारित न्यायिक नियमों को राज्य की मान्यता प्राप्त थी।
विद्वानों का मानना है कि गुप्तकाल की न्याय व्यवस्था ने प्राचीन भारतीय समाज को स्थिरता, नैतिकता तथा नवीन दिशा दी। इस तरह कहा जा सकता है कि गुप्तकाल की न्याय व्यवस्था प्राचीन भारतीय विधि परंपरा का एक सुव्यवस्थित, धार्मिक तथा व्यावहारिक रूप थी।
प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था का अध्ययन यह दिखाता है की न्याय व्यवस्था समय के साथ साथ विकसित होती रही जिस न्याय व्यवस्था का वैदिक काल में शूक्ष्म रूप देखने को मिलता है। वह गुप्त काल तक अपना एक विकसित रूप धारण कर चुकी थी। ऋग्वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल में न्याय धार्मिक नियमों तथा सामाजिक व्यवस्था के अनुसार होता था, जिसमें राजा या पंचायतें केवल गंभीर मामलों में अपना हस्तक्षेप करती थी। महाजनपद काल तथा मौर्य काल में न्याय व्यवस्था केंद्रीकृत हुई राजा सर्वोच्च न्यायाधीश के रूप में सामने आया राजा के पास अब सर्वोच्च न्यायिक अधिकार थे। गुप्तकाल की न्यायिक व्यवस्था अधिक संगठित केंद्रीकृत तथा धर्मशास्त्र पर आधारित हुई जिसमें राजा के पास सर्वोच्च न्यायाधीश था, लेकिन न्यायिक कार्य धर्मस्थो, आमात्यो, ग्राम पंचायतों तथा गिल्डो के द्वारा संपन्न होते थे। अपराध एवं दण्ड की व्यवस्था अपराध की गंभीरता तथा दोषी की सामाजिक स्थिति के अनुसार थी इतिहासकारों के विचार इस बात की पुष्टि करते हैं कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था ने सामाजिक अनुशासन, नैतिकता तथा धार्मिक मानदंडों के साथ साथ व्यवहारिक न्याय की भी स्थापना की। इस तरह प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था ने समय के अनुसार केंद्रीयकरण तथा विकेंद्रीकरण का समन्वय इस। रखा। धर्म तथा राज्य के प्रभाव ने न्याय को वैधता दी तथा भारतीय समाज के लिये एक मजबूत कानून और नैतिक ढांचा प्रस्तुत किया।

संदर्भ ग्रंथ

1. ऋग्वेद. मंडल 5, सूक्त 44, मंत्र 6.
2. ऋग्वेद. मंडल 10, सूक्त 85, मंत्र 26.
3. ऋग्वेद. मंडल 6, सूक्त 51, मंत्र 5.
4. ऋग्वेद. मंडल 1, सूक्त 13, मंत्र 2-4.
5. अथर्ववेद. काण्ड 6, सूक्त 88, मंत्र 1-3.
6. अथर्ववेद. काण्ड 8, सूक्त 10, मंत्र 5.
7. अथर्ववेद. काण्ड 1, सूक्त 9, मंत्र 1-3.
8. मनुस्मृति. अध्याय 7, श्लोक 6.
9. मनुस्मृति. अध्याय 9, श्लोक 130.
10. अर्थशास्त्र. अध्याय 4.1, श्लोक 1-15.
11. अर्थशास्त्र. अध्याय 4.4, श्लोक 1-22.
12. अर्थशास्त्र. अध्याय 3.3, श्लोक 1-31.
13. अर्थशास्त्र. अध्याय 3.11, श्लोक 1-26.
14. कुमार बृजेश्व. प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था. विश्वविद्यालय प्रकाशन; वाराणसी: 2017.
15. काणे पांडुरंग बामन. धर्मशास्त्र का इतिहास.
16. पाण्डेय श्यामलाल. भारतीय राज्यशास्त्र प्रणेता. पृष्ठ 89-91.
17. कृष्णकुमार डॉ. प्राचीन भारत का संविधान तथा न्याय व्यवस्था. राष्ट्रीय संस्कृत संसाधन मानित विश्वविद्यालय; नई दिल्ली

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2025 मिनाक्षी देवी, डॉ. नहीद अहमद. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/